के बीज जैन धर्म परम्परा के गुरू ने प्रदान किये। उस जमाने में अणुव्रत अंदोलन चरम सीमा पर था। जन साधरण बिना टीका टिप्पणी से उस से जुड जाते थे। तेरापंथ सम्प्रदाय पंजाव में इसी शताब्दी में आया। पंजाव व हरियाणा के अग्रवालों ने संत व साध्वियों में धर्म प्रचार शुरू किया। इन संतों के व्याख्यान खुले होते थे। इन खुले व्याख्यानों का स्थान, समय निश्चित था। स्वयं १९४९ में आचार्य तुलसी प्रथम वार पंजाव पधारे। साधु साध्वी त्यागी थे। उनकी वात लोगों को सरलता से जंचने लगी। वह अणुव्रत का संदेश लेकर पंजाब पधारे थे। उनके उपदेशों को सभी वर्णों, जातियों, धर्मों के लिए सांझे थे। वह तीन तीन समय व्याख्यान करते। पंजाव की व्यापारिक मंडीयों में उनका व्यापक असर था। वह जन उपयोगी उपदेश देते थे। हजारों साधु साध्वी, उनका अणुव्रत का संदेश भारत के कोने कोने में धर्म प्रचार कर रहे थे।

इन साधुओं में से तीन साधुओं का ग्रुप हमारे धूरी में भी ठहरा। उनके नाम थे श्री रावत मल्ल, श्री वर्धमान जी व श्री जय चन्द। तीनों ने मेरे परिवार व मुझे प्रभावित किया। मुझे इन्हें सुनने का सव से ज्यादा अवसर मिला। इनका चर्तुमास था हम चर्तुमास तीन समय जाते थे। इनका व्याख्यान सुनते। मेरे माता पिता इनके उपदेश अनुसार धर्म अराधना करते। हमने इन्हीं से गुरू धारणा ली और सम्यक्त्व के पाठ को सीखा। तीनों में सवसे वडे थे मुनि रावत मल्ल जी और सवसे छोटे थे मुनि वर्धमान जी।

तीनों मुनिराज महान तपस्वी, तत्ववेता, देव, गुरू व धर्म के प्रति समर्पण बढाने वाले थे। वह आचार्य तुलसी के अणुव्रत के माध्यम से जैन धर्म का प्रचार करते थे। अव श्री रावत मुनि जी व श्री वर्धमान मुनि जी का देव

लोक हो गया है। इन्होंने धर्म शिविरों के माध्यम से जैन साधुओं के नियम, जैन साधुओं के भोजन की विधि, वन्दना विधि को सिखाया'' ताकि भविष्य में आने वाले साधु साध्वीयों को दिक्कत न आए। इसी समय हमें अणुव्रत परीक्षा व जैन धर्म की परिक्षाओं की तैयारी करवाई जाती। यह शिविर चारित्र निर्माण का आदर्श केन्द्र थे। बच्चे शिविरों के माध्यम से काफी सीखते। यह शिक्षा शिविर मैने तरूणाई की अवस्था में लगाए। इन संतों में श्री जयचंद जी महाराज आज भी गुजरात में धर्म प्रचार कर रहे हैं। यही तीन संतों ने हमें आचार्य तुलसी व जैन धर्म के बारे में समझाया था। इसके साथ उन्होंने मुझे जैन तत्वों व इतिहास का ज्ञान कराया।

प्रकरण ३

तीर्थंकर परमात्मा का स्वरूप

यह बातें सन् १९६८ के वर्ष की हैं यह मेरे जीवन के नवनिर्माण का वर्ष था। मेरा शुभ कर्म का उदय हो चुका था। मुझे सम्यकत्व की प्राप्ति वीतराग परमात्मा का स्वरूप समझाया गया। जैन धर्म में परमात्मा एक अवस्था का नाम है जैन धर्म जब आत्मा जन्म मरण से मुक्त होने की अवस्था में आती है तो सर्वप्रथम कर्म बंध के बंधन को तोड़ कर केवल्य ज्ञान, केवल्य दर्शन को प्राप्त करती है। ऐसी आत्मा तीन लोक में तिर्यंच व देव पुजित होती है। जीव व आजीव तत्व की व्याख्या करती है। इस अवस्था को साकार परमात्मा या अरिहंत कहते हैं। अर्हत में जो तीर्थंकर गोत्र का उपार्जन करते हैं वह जन्म से तीन ज्ञान के धारक होते हैं। दीक्षा लेते उन्हें चौथा ज्ञान मन पर्यव ज्ञान प्राप्त होता है। फिर पांचवा केवल्य ज्ञान प्राप्त कर वह तीर्थ की स्थापना करते हैं। ऐसी आत्माएं देवों द्वारा पूजित, अष्ट प्रतिहार्य व ३४ अतिशय युक्त मानी जाती हैं। स्वर्ग के ६४ इन्द्र उनके गर्भ, जन्म, दीक्षा, केवल्य ज्ञान व मोक्ष के समय धरती पर अपने देव परिवार सहित उतरते हैं। इन की धर्म सभा को समोसरण कहते हैं। इन के शरीर विशेष लक्ष्णों से युक्त होते हैं। यह क्षत्रिय कुल में जन्म लेकर धर्म रूपी चार तीर्थ की स्थापना करते हैं। यह तीर्थ हैं साधु, साध्वी, श्राविक व श्राविका। इसी तरह के २४ तीर्थंकर इस भरत खण्ड में अनंत बार जन्म लेते हैं। तीर्थंकर परम्परा महाविदेह क्षेत्र में शास्वत रहती है। वहां २० विहरमान तीर्थंकर भ्रमण करते रहते हैं। जैन धर्म में यह देव का रूप हैं इसी का भाग हैं निराकार परमात्मा जिन्हें जैन परिभाषा में सिद्ध परमात्मा

कहते हैं। हर अरिहंत अपनी जीवन यात्रा पूर्ण कर सिद्ध बनता है। जैन न तो एकेश्वर वाद को मानते हैं न ईश्वर को सुष्टि का कर्ता मानता है। कर्म के फल का कर्ता व भोक्ता आत्मा को मानता है। जैन दृष्टि में आत्मा गुणों की दृष्टि से एक है। संख्या की दृष्टि में जितने जीव हैं उतनी आत्माएं हैं। यही आत्मा कर्मबंधन से मुक्त हो सिद्धावस्था को प्राप्त करती है। जैन धर्म ईश्वर के अवतारवाद की धारणा नहीं है। जैन कर्म प्रधान, श्रमण धर्म है।

गुरू का लक्षण :

जैन धर्म में दूसरा लक्षण गुरू है। गुरू ३६ गुणों का स्वामी होता है।वह ५ महाव्रत, ५ समिति, ३ गुप्ति, चार काषायों के मुक्त, पांच इन्द्रियों के विषयों पर कावू करने वाला होता है। इस गुरू का दूसरा नाम श्रमण, निग्रंर्थ है। वह अपनी साधना से लोक व परलोक के विषयों को जीत कर जन समान्य में धर्म का प्रचार करता है। यह वीतरागी गुरू छह प्रकार के जीवों की हिंसा से वनते हैं।

धर्म का स्वरूप :

जैन धर्म का तीसरा तत्व धर्म हैं। यह धर्म मिथ्यात्व रहित सम्यक्त्व है। इस में शोक का कोई स्थान नहीं है। सर्वज्ञ परमात्मा द्वारा कथित धर्म ही सच्चा धर्म है। धर्म की शरण ग्रहण करने वालो को जरूरी है कि वह सर्वज्ञों द्वारा कथित जिन आज्ञा का अक्षरता से पालन करे। तीर्थंकरों द्वारा कथित जीव अजीव सिद्धांतों शास्त्रों के अनुसार जाने। फिर माने। फिर उन सिद्धांतों के अनुसार चले। इस देव गुरू धर्म का स्वरूप ही सम्यक् दर्शन जिसे दूसरी भाषा में सम्यक्त्व भी कहते हैं।

सम्यक्त्व का महत्व :

सम्यक्त्व के पालन के लिए आचार्य उमास्वाती ने तत्वार्थ सूत्र में तीन रत्न को सम्यक्त्व माना है। वह हैं सम्यक्त्व दर्शन (सही श्रद्धा) कण्यक ज्ञान, सम्यक् चारित्र (सही ढंग से उस पर चलना) इसी लिए उनका कथन है :

"सम्यक्त्व दर्शन ज्ञानचारित्राणी मोक्ष मार्ग"

यह तत्व था जिसे मैंने श्रावक होने के नाते गुरू धारणा के समय स्वीकार किया। सात कुव्यसन का त्याग श्रावक का पहला लक्षण है। जैसे मुनि कहलाना कठिन है वहां श्रावक कहलाना भी सरल नहीं। इन तीनों मुनियों ने मुझे सम्यक्त्व का रत्न प्रदान किया। मुझे गुरू के रूप में आचार्य श्री तुलसी के नाम से गुरू दीक्षा प्रदान की गई। मेरे जीवन में सव नया था। सम्यकत्व् की महिमा जैन धर्म में कितनी है कि इस की परीक्षा की कभी कभी हो जाती है। सम्यक्तवी धर्म पर दृढ़ रहता है। सव धर्मों का सम्मान करते हुए अपने धर्म का पालन करना उसका लक्षण है, गुण है। श्रावक धर्म का क्षेत्र वहुत विशाल है। इस के लिए वहुत रास्तों से गुजरना पडता है। सम्यकत्व पर मिथ्यात्व कैसे परीक्षा लेता है, इस विषय में एक घटना का उल्लेख करना ही काफी है।

"किसी समय अंवड नाम का सन्यासी, अपने भेष में प्रभु महावीर के दर्शन करने आया। गणधर गौतम् इन्द्रभूति ने उस का सम्मान किया। प्रभु महावीर का उपदेश सुनने के वाद वह जव जाने लगा ता प्रभु महावीर एक धर्मलाभ अपनी श्राविका सुलझा के नाम दिया। वह सन्यासी हैरान था कि इस श्राविका में ऐसा कौन सा गुण है कि प्रभु महावीर ने इसे धर्म लाभ प्रेषित किया है। अंवड सन्यासी वहुत सी

ऋद्धि-सिद्धियों का स्वामी था। वह जैसा रूप या भेष चाहे बदल सकता था अंवड सन्यासी नगर के बाहर आया। उस ने विष्णु का रूप बनाया। चर्तुभुजी विष्णु के रूप को देख नगर वासी उमड़ पडे। विष्णु बने अंवड ने कहा 'जाओ सुलसा को कहा उस के लिए विष्णु साक्षातकार से धरती पर आ गए हैं वह मुझे वन्दना कर अपना जीवन धन्य करे।

लोगों की भीड़ सुलसा के घर की ओर उमड़ पडी। लोगों ने कहा सुलसा तूं धन्य है तेरे कारण हमें भगवान् विष्णु के दर्शन हो गए हैं। तुझे त्रिलोकी नाथ ने याद किया है। तूं चल के उनकी भक्ति कर। सुलसा ने कहा "ऐसे देव को नहीं मानती। यह तो किसी मायाधारी का कार्य है। जो मुझे अपने सम्यकूत्व से गिराने आया है। लोगों ने सुलसा श्राविका का उतर मायाधारी विष्णु को दिया। कुछ समय के बाद अंवड सन्यासी ने ब्रहमा का रूप बनाया। सही प्रक्रिया दोहराई गई सुलसा का वही उतर था जो विष्णु के संदर्भ में उसने दिया था। अंवड सन्यासी ने सोचा, जरूर सुलसा में ऐसी विशेषता है जिस कारण प्रभु महावीर ने इस धर्म लाभ प्रेषित किया है। यह सामान्य महिला नहीं थी। उस की धर्म के प्रति आस्था देख उस अंवड ने अंतिम तीर छोड़ा। उसने शिव का रूप बनाया। वह सुलसा के दर पर मांगने आया। सुलसा बाहर आई। उसने कहा "तू क्यों लोगों में अपने भ्रम से मिथ्यात्व फैला रहा है। तूं न विष्णु है, न ब्रह्मा, न शिव। तीन लोक के अधिनायक देव क्या ऐसे भागते फिरते हैं तू जो दीखता है वह है नहीं। क्यों लोगों को भ्रमा कर पाप का भागी बनता है। मैं प्रभु महावीर की कृपा से देव का स्वरूप जानती हूं तू धरती का प्राणी है देव नहीं। जो भी बात है प्रत्यक्ष व अभय रूप से कहो। मैं तुम्हारी गलती के लिए तुम्हें क्षमा देती हूं।

एक तरफ अंवड सन्यासी का चिंतन गहरे में हुआ था। वह सम्यकत्व का स्वरूप तो जानता था। पर सुलसा का सम्यकत्व कितना दोष रहित है। उसे जानने के लिए उस ने यह रूप धारण किया था। अंवड सन्यासी अपने प्रत्यक्ष रूप में आया उसने सुलसा को प्रणाम किया और कहा कि तीर्थंकर प्रभु महावीर ने आप को धर्म लाभ भेजा है।

मैं तो आप के सम्यकत्व की परिक्षा कर रहा था। मुझे इस कृत्य के लिए क्षमा करें। सुलसा ने अंवड को सहधर्मी सा सन्मान दिया। क्योंकि उस के शास्ता का संदेश इसे प्राप्त हुआ था। इस आशीवाद के पीछे गहन रहस्य छिपा था। यह रहस्य था सुलसा की धर्म आराधना। इसी आराधना के कारण सुलसा ने तीर्थंकर गोत्र का उपार्जन किया। तीर्थंकर पद की प्राप्ति के लिए पूर्व जन्म में कठोर साधना करनी पडती है। अरिहंत बनने के लिए अरिहंत की उपासना करनी पडती है। सिद्ध बनने के लिए सिद्धों की उपासना करनी जरूरी है। जीवन में सारभूत है तत्व सम्यकत्व, विकास का मार्ग है सम्यकत्व। विनाश का मार्ग है मिथ्यात्व। हमें हर समय मिथ्यात्व के तप से सावधान रहना है।

प्रकरण – ४

धर्म भ्राता श्री रविन्द्र जैन से मालेरकोटला में प्रथम भेंट

जीवन घटनाओं का नाम है हर पल, हर क्षण तथ हर समय कुछ न कुछ संसार में घटित होता रहता है। मेरे जीवन में भी एक महत्वपूर्ण घटना ३१ मार्च १९६९ को मालेरकोटला वैंक में घटित हुई। यह घटना किसी पूर्व जन्म के शुभकर्मों का उदय थी। जव मेरी धर्म यात्रा श्री रविन्द्र जैन मेरे जीवन का सहयोगी बन गया। संसार में एक वात ही कठिन है वह है स्वयं के वारे में कुछ कहना या जो अपना हो उनके वारे में कहना। मैं नहीं जानता कि रविन्द्र जैन ने संक्षिप्त मुलाकात में ही मुझे अपना गुरू मान लिया। मैंने भी उसे अपना धर्मभ्राता माना। इसका जीवन एक शव्द में ही पूर्ण हो जाता है वह शव्द है "निस्वार्थ भाव से समर्पण"। पता नहीं इसने मुझ में कौन सा गुण देखा ? यह प्रश्न अव भी अनुतरीय है। पर मैंने जैसे पहले कहा 'रविन्द्र जैन मेरे जीवन का अंहम भाग वन चुका है। मुझे इस के परिचय में कुछ शव्दों में लिखता हूं।

"मालेरकोटला के एक सामान्य जैन परिवार में श्री रविन्द्र जैन का जन्म २३ अक्तुवर १९४९ को (भैय्या दूज) को हुआ। शुरू में दसवीं वड़ी मुश्किल से पास हुई। फिर कृषि उप-निरीक्षक का डिप्लोमा पी.ए.यू. लुधियाना से कर सरकारी नौकरी शुरू की। वहुत अल्पायु में यह नौकरी में आया। फिर नौकरी में ही इसने वी.ए. पंजावी विश्वविद्यालय से उर्तीण की। वी.ए. धर्म शिक्षा की परीक्षा में हम दोनों ने पंजावी विश्वविद्यालय पटियाला से सम्पन्न की। यह व्यक्ति

मेरे जीवन के हर दुःख सुख को अपना समझता है। मेरा हित इसका हित है। जिस कार्य को शुरू कर देता है उसे पूरा करके छोड़ता है। इस के कारण मुझे जैन समाज की सेवा का सुअवसर प्राप्त हुआ। विभिन्न सम्प्रदायों के मुनियों से मुलकात, साहित्य प्रकाशन, समारोह, संस्था निर्माण में इस का दिमाग काम करता है। पर यह कार्य मेरे नाम से करता है, अपना नाम छिपाने की चेष्टा करता है। यह त्यागी व संयमी है। यह स्वार्थ के वशीभूत कार्य नहीं करता। हमारा जीवन एक दूसरे के लिए है। इसी लिए विद्वान लोग हमारे प्रेम को सम्मान से देखते हैं। मैं ज्यादा वात को अधिक न वढ़ाता हुआ इस से हुई भेंटवार्ता के अंश प्रस्तुत कर रहा हूं।

"उन दिनों श्री रविन्द्र जैन मालेरकोटला में सर्विस कर रहा था। किसी काम के लिए यह हमारे बैंक में एक मित्र के साथ आया। यह सूचना के लिए पहले भी आता था। पर मेरा इस से कभी संवाद नहीं हुआ था। श्री रविन्द्र जैन का मित्र, मेरा भी मित्र था। उसे किसी विभागीय सूचना की जरूरत थी। मैंने सूचना के वाद दोनों को चाय पिलाई।

फिर रविन्द्र जैन ने मुझ से मेरा नाम पूछा। नाम पूछने के विशेष कारण था उसे वैंक में उसे सप्ताह सूचना इकट्ठी करके भेजनी होती थी। मैंने अपना परिचय देते हुए वताया कि मैं तेरापंथी हूं। आचार्य श्री तुलसी मेरे गुरू हैं। मैं पुरूषों में जो उत्तम है उनका दास हूं। मेरी इस वात से मेरा धर्मभ्राता वहुत प्रभावित हुआ। फिर मैंने इसे धूरी अपने घर आने का निमंत्रण दिया। यह संक्षिप्त भेंट थी। जो मेरे जीवन पर छाप छोड़ गई। इस भेंट ने हमें जीने की कला का इतिहास सिखाया। धर्म के प्रति स्वाध्याय वढ़ा। फिर इस भेंट ने समर्पण की यात्रा का सफर शुरू किया। इस भेंट में मैंने रविन्द्र जैन को धूरी आने का निमंत्रण दिया। मेरे धर्मभ्राता ने

इसे सहर्ष स्वीकार किया। मुझे अनुभव हुआ कि हमारी भेंट असाधारण है। मैं जिस व्यक्ति से मिल रहा हूं यह संसार की कल्पनाओं, वासनाओं, इच्छाओं से कोसों दूर है। यह तो जैन धर्म की भव्य आत्मा है। मेरा सौभाग्य है कि मैं इस व्यक्ति से मिल रहा हूं।

इस प्रकार दिन वीतने लगे। एक दिन यह मुझे मेरे घर के पास मिला। मेरे घर का पता पूछा। मैंने इसे आने को कहा। इसने कहा "अभी शाम हो रही है, फिर कभी जरूर आउंगा"। फिर एक दिन वह मंगलमय समय आ गया। जब मेरा धर्मभ्राता श्री रविन्द्र जैन को किसी सरकारी काम के लिए धूरी आना पडा।

मुझे इस ने स्वयं वतलाया कि मुझे एक सूचना इक्ट्ठी करने के लिए धूरी आना हैं मैं आप के दर्शन करूंगा। मैंने कहा "क्या बात करते हो ? दो दिन आते जाते रहेंगे ? क्या फायदा ? आप दो दिन काम समाप्त कर के रोजाना मेरे घर आ जाया करें। यह घर आप का ही है"।

मेरी इस बात का मेरे धर्मभ्राता ने शिरोधार्य किया। वह दो रातें मेरे घर पर रूका। यह दिन कुछ गर्मी के थे पर इतनी ज्यादा गर्मी नहीं थी। यह दो दिन हमें एक दूसरे को समझने के लिए अच्छा अवसर मिला। मुझे लगा कि जो व्यक्ति मेरे सामने वैठा है वह मैं ही हूं। मैं और मेरे धर्मभ्राता में मात्र शरीरिक अंतर है। आत्मा की दृष्टि से हम एक हैं। मेरा धर्मभ्राता सत्य के करीब है। यह अनुभव की भूमिका पर जीने वाली जीवात्मा है। मैंने अनुभव किया कि मेरा इस व्यक्ति से कई जन्मों का रिश्ता है। एक जन्म में इतना अनुभव नहीं किया जा सकता। इसका त्याग, वैराग्य, व आध्यात्मिक जीवन ने मेरे जीवन पर अमिट छाप छोड़ दी यह भेंट इस कारण असाधारण थी कि मैं जैन धर्म के

इस प्रभावक श्रावक से मिल रहा था, जिसे शहर के निवासी सन्मान की दृष्टि से देखते थे। उस दिन से हमारा दैनिक मिलना शुरू हुआ। जब हम मिले थे तब हमारे पास कोई पुस्तक नहीं थी पर यह इस के सहज समर्पण का फल है कि हमारे पास हजारों ग्रंथ हैं। आज मैं जो हूं, जैसा हुं इस सब के पीछे मेरे धर्मभ्राता की मेरे प्रति भक्ति व सहज समर्पण के कारण हुं इस समर्पण की यात्रा ने हमें पंजाबी भाषा के प्रथम जैन लेखक, अनुवादक, इतिहासकार व कहानीकार तक बना दिया। मैं जीवन में अपने धर्मभ्राता रविन्द्र जैन की भेंट को महत्वपूर्ण उपलब्धि मानता हूं। वह अपनी बात की चेष्टा करता है पर अंतिम रूप से सिर झुका कर मेरा निर्णय मान लेता है। वह कई बार मेरे से चर्चा करता है, जिस से इसके ज्ञान का ही पता चलता है। आज इसने मुझे नई पहचान दी है। मैं एक कस्बे से राष्ट्रपति भवन तक पहुचा। इस का श्रेय मेरे माता-पिता, गुरूओं के आर्शीवाद, परिवार के सहयोग के बाद मेरे धर्मभ्राता को ही जाता है। यह रिश्ता देश, काल, जाति, रंग, आयु के भेद से परे है। मेरी हमेशा चेष्टा रही है कि मैं अपने धर्मभ्राता को हर तरह संतुष्ट व प्रसन्न रखूं। उसे कभी अपनी दूरी का एहसास न होने दूं। पर संसार के कार्यों में आदमी ऐसा उलझता है कि अपनों को चाहते हुए भी कम ध्यान दे पाता है। इन सब बातों के होते हुए भी मेरे धर्मभ्राता में गुण ही गुण हैं। वह दूसरों के गुणों को अपना... है। वह किसी को भी एक पल में प्रभावित कर सकता है। वह हर कार्य में मेरी सूरत देखता है। एक बात हम दोनों में समान है वह यह कि धर्म के प्रति आस्था। यही आस्था का ही फल था कि मुझे विभिन्न विद्वानों, मुनिराजों, साध्वीयों व आचार्यों के दर्शन करने, उनसे भेंटवार्ता करने, पुस्तकें लिखने की, तीर्थ यात्रा की प्रेरणा मिली।

शुरू से ही मैं स्वाध्यायशील था। परन्तु रविन्द्र जैन ने पहले मुझे पहले प्रेरक के रूप में प्रस्तुत किया। फिर संपादन का कार्य प्रदान किया। उसके वाद मैं भी सरस्वती की आराधना करने लगा। रविन्द्र जैन ने यह सव कार्य अपने वलबूते पर किये। वह व्यर्थ तर्क से दूर रहता है। उसे मेरा अनुशासन पसंद है।

श्री रविन्द्र जैन ने १९७२ में पंजावी में लिखना शुरू किया। जो अव तक चालू है। महावीर की वाणी का प्रचार करने वाले हम प्रथम अनुवादक बने। इस सारे कार्य का श्रेय व प्रेरिका जिन शासन प्रभाविका, साध्वी रत्ना जैन ज्योति, साध्वी श्री स्वर्ण कांता व उनकी शिष्या सरलात्मा इ साध्वी श्री सुधा को जाता है। साधुओं श्रमण फूल चंद म०, रत्न मुनि जी म० ने हमें आर्शीवाद दिया।

मेरी शादी :

रविन्द्र जैन की मुलाकात के वाद १९७३ में मेरी शादी संगरूर के जैन परिवार की लड़की नीलम जैनसे हुई वह धर्म कार्यों में मेरी सहायता करती है। मेरी पुत्री वन्दना, अनु व पुत्र अरिहंत भी मेरे धर्म कार्यों में वाधक नहीं वने। इस प्रकार घर में रहते हुए मुझे धर्म अराधना का अवसर मिला है।

देहली यात्रा व जैन मुनियों से मिलना :

अपने धर्मभ्राता के मिलने के वाद जीवन में एक अध्यात्मिक सफर शुरू हुआ। जिस के माध्यम से हम जैन धर्म की प्रसिद्ध हस्तियों के सम्पर्क में आये। यह अवसर था १९७२ में देहली की एशिया - ७२ प्रदर्शनी देखने का अपने धर्मभ्राता रविन्द्र जैन के साथ मैं देहली गया। यह मेरा देहली का प्रथम सफर था। मेरे धर्मभ्राता का दूसरा सफर था। हम

साधारण ट्रेन से देहली पहुंचे। पहले स्वः साध्वी महेन्द्र कुमारी के दर्शन किये। वहां फालतु सामान रखा। फिर एशिया - ७२ प्रर्दशनी देखी। उस जमाने में रूस का मण्डप सब से आकर्षित था वहां चांद से लाई गई मिट्टी के कण रखे गए थे। हर देश का अपना मण्डप था, हर प्रदेश का अपना स्थल था। एक स्थल को देखने के लिए बहुत समय चाहिए था, पर हम तो मात्र २-३ दिन में काफी देखना चाहते थे। अपने समय के अनुसार हमने यह प्रंदर्शनी देखी। दिन में खाना खाया। शाम को हम आगरा जाने वाली ट्रेन में बैठे। उस समय आगरा में जैन जगत के प्रसिद्ध उपाध्याय श्री अमर मुनि जी विराजमान थे। हम सुबह पहुंचे। जिस स्थान पर हम गए उपाध्याय श्री अमर मुनि जी के दर्शन न हुए। उन के गुरू वयोवृद्ध आचार्य स्वः श्री पृथ्वीचंद जी म० के दर्शन हुए। वहां स्नान किया। फिर उस पर आए जहां कवि श्री विराजमान थे। कवि जी एक क्रांन्तिकारी संत थे वैदिक, बौद्ध व जैन धर्म पर उन का समान अधिकार था। आप ने हिन्दी साहित्य में १०० से ज्यादा पुस्तकें प्रदान की हैं। वीरआयतन राजगृह आप की देन है। उस समय आप श्री उत्तराध्ययन सूत्र का सम्पादन करवा रहे थे। उनके पास श्री श्री चन्द्र सुराणा आगरा बैठे थे। हमारी उनसे प्रथम मुलाकात थी। इस भेंट में हमने उनकी एक हिन्दी पुस्तक महावीर सिद्धांत व उपदेश) का पंजाबी अनुवाद करने की आज्ञा मांगी थी। उनका आशीर्वाद अंतिम क्षण तक हमारे साथ रहा। उन्होंने सहर्ष आज्ञा प्रदान की। आगरा में फिर ताज महल देखा। ताज के बाद दयाल बाग देखा। वापसी मथुरा में श्री कृष्ण जन्म भूमि देखी। वापिस शाहदरा में एक रिश्तेदार के यहां रूक कर अगले मुनि आचार्य श्री सुशील कुमार जी के दर्शन किए, जो कि अंतराष्ट्रीय स्तर के संत थे। बाद में

उनके हर कार्यक्रम से हमारा नाम जुड़ गया। यह भेंटों से हमें कुछ करने की प्रेरण मिली। मेरे धर्मभ्राता श्री रविन्द्र जैन ने महावीर सिद्धांत व उपदेश पुस्तक का अनुवाद करना शुरू किया। आचार्य सुशील कुमार जी म० की प्रेरणा से हमें २५०० साला महावीर निर्वाण महोत्सव समिति मनाने की प्रेरणा मिली। हम इस कार्य में जी जान से जुट गये। हालांकि उस समय हमारी आयु बहुत कम थी। समाज को भी नहीं समझा था। लेखन कार्य चलता रहा।

जैन आचार्य, अणुव्रत, अणुशास्ता, युगप्रधान, गणाधिपति श्री तुलसी गणि जी महाराज के प्रथम दर्शन

पिछले अध्ययनों में मैंने तेरापंथ सम्प्रदाय के प्रमुख आचार्य का परिचय देते हुए आचार्य तुलसी का परिचय दिया था। परन्तु १९७३ तक मेरे को उनके दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ था। जो कार्य जब होना होता है वह तब ही होता है यह मेरी मान्यता है। आचार्य श्री तुलसी जिन्हें मैंने गुरू माना था उनके दर्शन १९७३ तक न कर सका। इसका कोई विशेष कारण नहीं था। वैसे मैं कुछ सफर कम ही करता था। पर कुछ संयोग बना और कुछ मुझे सम्यक्त्व प्रदान करने वाले श्री रावत मुनि, श्री वर्द्धमान मुनि, श्री जय चन्द्र महाराज की सशक्त प्रेरणा थी कि आप गुरूदेव आचार्य श्री तुलसी जी महाराज के दर्शन कीजिए। मेरे लिए यह एक शुभ अवसर था, जब मैं संसार के सब से शक्तिशाली धर्म गुरू से मिल रहा था। मेरे मन में उनके बारे में अथाह श्रद्धा थी। इस यात्रा ने इस श्रद्धा को नया रूप दिया। मुझे कुछ करने का उत्साह बना जिसका परिणाम २५००वां महावीर निर्वाण शताब्दी के रूप में आया।

कारण ऐसा बना कि आचार्य तुलसी जी ने अखिल भारतीय स्तर पर एक मीटिंग २५००वां महावीर निर्वाण शताब्दी कमेटी की एक मीटिंग बुलाई थी। एक तीर से दो निशाने वाला काम हुआ। आचार्य श्री का उस वर्ष का चतुर्मास हिसार के जिंदल भवन में था। हम धूरी से रात्रि को चले। सुबह ही आचार्य श्री के प्रवास स्थल पर पहुंचे। यह मंगलमय समय सुबह का था। जब हम पहुंचे तो विशाल प्रवचन स्थल देखा। यह पंडाल बडे व्यवस्थित ढंग से बनाया गया था। यात्रीयों का तांता लगा हुआ था। मैं अपने धर्मभ्राता रविन्द्र जैन के साथ गुरूदेव के दर्शनों को पहुंचा। वहां पहुंचते ही बूंदा-बांदी होने लगी। जैन साधु ऐसे मौसम में ना बाहर निकलते हैं न भोजन करते हैं। वह वर्षा रूकने का इंतजार करते हैं। आचार्य श्री की दिनचर्या शुरू होने वाली थी। वह भी वर्षा रूकने का इंतजार कर रहे थे।

मैं व मेरा धर्मभ्राता रविन्द्र जैन ने आचार्य श्री के चरणों में वन्दन किया। पहचानने में समय नहीं लगा, क्योंकि उने चित्र को हम हमेशा प्रणाम करते हैं। मैंने देखा 'एक श्वेत वस्त्रधारी चेहरा, बडी-बडी आंखें, चेहरे पर दार्शनिकों सी मुस्कुराहट ने मेरा अभिनंदन किया। अचानक वर्षा में हम कुछ घबरा गए थे। पर उनकी शरण में आते ही सब बात भूल गए। फिर उन्होंने हमारा वन्दन सरलता से स्वीकार करते हुए पहले मुझे संबोधित करने हुए पूछा "भाई ! आपका नाम क्या है ? आप कहां से आए हो ? क्या काम करते हो ?, यह सीधे सादे प्रश्न थे। हर प्रश्न में उनकी महानता झलक रही थी। मैं सोचने लगा कि कहां लाखों लोगों द्वारा वन्दनीय आचार्य और कहां हम दुनियावी लोग। उनकी महानता उनकी विनम्रता व शालीनता सराहनीय थी। मैंने कहा "गुरूदेव ! मैं धूरी से आया हूं। मेरा नाम पुरूषोत्तम

दास है। मैं नौकरी करता हूं।''

गुरूदेव ने कहा, ''तुम पुरूषोत्तम दास हो, पुरूषोत्तम जैन क्यों नहीं ?'' मेरी इच्छा है कि आप पुरूषोत्तम जैन कहलाओ। जिन का उपासक ही जैन कहलाता है।'' यह उनका ईशारा था और मेरे सुनहरे भविष्य की ओर, जिस की कल्पना मैं किया करता था। मैंने आज्ञा मानते हुए कहा, ''आज से मैं आप का पुरूषोत्तम जैन हूं। आप की आज्ञा भगवत् आज्ञा है।'' जैन धर्म में आचार्य से बढ़ कर कोई पद नहीं। उस की आज्ञा सर्वमान्य होती है। आचार्य बहुत मध्यम कद व आर्कषण प्रतिभा के धनी थे। वह अपनी एक बात से ही लोगों का जीवन बदला देते थे। अणुव्रत के माध्य से लाखों लोगों को नैतिकता व प्रमाणिकता का पाठ पढ़ा चुके थे।

इसी भेंट में आचार्य श्री ने हमें स्वाध्याय की प्रेरणा दी। मुझे ध्यान है जब रविन्द्र ने एक प्रश्न आचार्य से उनकी परम्परा के बारे में पूछा था। वह प्रश्न शास्त्रीय आधार का था। श्री रविन्द जैन ने पूछा,''आप के सम्प्रदाय में आचार्य तो हैं पर उपाध्याय जैसा पद क्यों नहीं है ?''

आचार्य भगवान् ने उत्तर दिया, '' भाई ! हमारे प्रथम आचार्य भिक्षु बहुत महान थे। उन्होंने साधू-साध्वीयों को पद के लिए लड़ते झगड़ते देखा था। उन्होंने सभी पद आचार्य पद में इकट्ठे कर दिये। क्योंकि आचार्य पद से सब पद छोटे होते हैं। तब से अब तक हमारे सम्प्रदाय में आचार्य के सिवा कोई पद नहीं। यही हमारे संघ में अनुशासन का मुख्य कारण है। हमारे संघ में सभी साधु-साध्वियां एक आचार्य के शिष्य होते हैं।''

इस तरह आचार्य श्री से थोड़ी सी मुलाकात जीवन की पूंजी बन गई। सब से बड़ी बात जो उन्होंने अपनी भेंट वार्ता में प्रेरणा स्वरूप कही, वह थी, ''देखो

संसार में कुछ न कुछ प्रमाणिक कार्य करना चाहिए। मेरी दृष्टि में सब से महान लेखक होता है जो कभी नहीं मरता। वक्ता समय के साथ बीत जाता है। मेरी दृष्टि में लेखक संसार में अजर अमर है। समय भी लेखक को न कभी मिटा सका है न मिटा सकता है।''

यह स्वर्णिम वाक्य मेरे जीवन में क्रांन्तिकारी वाक्य थे जिन्हें मैं किसी ग्रंथ से कम की संज्ञा नहीं देता। आचार्य तुलसी के वह वाक्य हमें साहित्य की रचना का प्रेरणा स्त्रोत हैं। संसार में कुछ बातें ऐसी होती हैं जो आत्मा पर अमिट छाप छोड़ जाती हैं। आचार्य तुलसी से भेंटवार्ता मेरे जीवन में अमूल्य निधि है। जहां उन्होंने हमें साहित्य लिखने का आशीर्वाद दिया, वहां उन्होंने इस मीटिंग में बुला कर समाजिक कार्य करने का सौभाग्य प्रदान किया।

दोपहर को अखिल भारतीय श्री श्वेतान्वर तेरापंथी जैन महासभा कलकता की मीटिंग आचार्य श्री के सान्निध्य में सम्पन्न हुई। जिस में आचार्य श्री ने समस्त तेरापंथीयों को दूसरे सम्प्रदायों से मिल कर, हर राज्य में समिति गठित करने की प्रेरणा दी। उनका दूसरा रूप हमें मीटिंग में देखने को मिला, जब उन्होंने जैन एकता की बात को ध्यान में रखकर २५००वां महावीर निर्वाण शताब्दी मनाने की प्रेरणा दी। उन्होंने इस बात का प्रमाण स्वयं दिया, जब उन्होंने देहली के अणुव्रत भवन को २५००वां महावीर निर्वाण शताब्दी समिति का कार्यालय बना दिया। आचार्य श्री ने २५००वां महावीर शताब्दी पर जैन समाज को एक अद्‌भुत तोहफा ''जैन विश्वभारती लाड़नूं'' के नाम से दिया। समस्त भारत में यही एक मात्र सर्वमान्य सम्प्रदाय संस्थान है जिसे यू.जी.सी. ने विश्वविद्यालय का दर्जा दिया है। अब इस विश्वविद्यालय से बी.ए., एम.ए., पी.एच.डी. तक जैन धर्म,

प्रेक्षा, ध्यान, जीवन विज्ञान पर की जा सकती है।

आचार्य श्री तुलसी जी महान राष्ट्र भक्त थे। राष्ट्र के सामने कोई समस्या आई तो उन्होंने सरकार का साथ दिया। सभी राजनैतिक दल आचार्य श्री को जैन धर्म का सर्वमान्य नेता मानती थी। सभी सरकारें उनकी वात अणुव्रत के माध्यम से सुनती थीं। उन्हें अपना महान नेता मानकर उनके आदर्शों पर चलने का प्रयत्न करती । उनका जीवन अभय का जीता जागता प्रमाण है। वह कितने कष्ट, पीड़ा आए, डरे नहीं। मुझे इस के वाद भारत के विभिन्न भागों में उनके दर्शन करने का लाभ सपरिवार मिला। अंतिम समय उनके मृत्यु अवसर पर सारा संसार इकट्ठा हुआ। आचार्य श्री तुलसी की प्रेरणा से अणुव्रत अवार्ड स्थापित हुआ। मेरे जीवन में हर समय उनका आशीर्वाद रहा। ऐसा धर्म गुरू परम दुर्लभ है। वह मेरी आस्था का आधार थे।

आचार्य तुलसी भारत की कुछ मानी हुई हस्तियों में से एक थे। उन्होंने अपने जीवन में हिन्दी, राजस्थानी, संस्कृत, प्राकृत भाषा में वहुत साहित्य रचा। जैन आगम वाचने के वह प्रमुख थे। भारत के पूर्व राष्ट्रपति व प्रसिद्ध विद्वान सर्वपल्ली डा० राधा कृष्ण ने उन्हें भारत की कुछ हस्तीयों में से एक गिना, जिन से वह प्रभावित थे। भारत के राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिंह ने उन्हें भारत ज्योति पद से अलंकृत किया।

आप से पहले तेरापंथ सम्प्रदाय एक पिछड़ा सम्प्रदाय था। विद्या का अभाव था। आचार्य श्री आगमों के मर्मज्ञ की एक श्रेणी खड़ी की। व्याकरण, कोष जैन विश्वकोश पर कार्य, शुरू हुआ जैन शोध को बढावा देने के लिए जैन विद्या पर सम्मेलन होने लगे। इस सम्मेलनों में देशों विदेशों के विद्वानों के अतिरिक्त उनके शिष्य भी भाग लेते थे।

इतने बडे संघ के नेता होने के बावजूद वह आम लोगों के गुरू थे। गुरू जो भी ऐसे जो जात पात, छुआ-छूत, रंग, नस्ल, लिंग आदि के भेदों से दूर अपनी साधना में रत रहते थे। जब उन्होंने आचार्य पद त्यागा तो जैन इतिहास में इसे आश्चर्यजनक घटना माना गया। क्योंकि जैन परम्परा के अनुसार आचार्य सारी आयु भर रहता है। आचार्य श्री को जब यह पद साधना में रूकावट बनने लगा, तो उन्होंने इस पद को एक झटके से छोड़ दिया। वह अल्पायु में संयम लेकर शीर्घ ही आचार्य पद से विभूषित हुए। वह परम साधक थे। उन्होंने स्वयं संयम पाला। हजारों साधु, साध्वीयों, समण, समर्णीयों को जैन धर्म में दीक्षित किया। उन्होंने हमारे जैसे हजारों परिवारों पर आर्शीवाद से मंगलमय उपकार किया।

आधुनिक संसार की समस्याओं के प्रति वह बहुत जागरूक थे। वह अणुबम का मुकाबला अणुव्रत से करने में विश्वास रखते थे। आचार्य तुलसी जी का स्वभाव बच्चों में बच्चों जैसा था। वह धर्म रक्षक थे। बड़ी-२ विपत्तियां उनके जीवन में आई, दूसरें धर्मों के विरोध को उन्होंने हंस कर सहा। उनका सारा जीवन मानवता को समर्पित था। वह कहते थे :- "मैं पहले मानव हूं, फिर जैन हूं, फिर तेरापंथ सम्प्रदाय का आचार्य हूं। यही मेरा परिचय है।" लाखों लोगों को व्यस्न मुक्त कर, उन्हें अहिंसा, सत्य, विनय, सरलता, सहनशीलता का उपदेश दिया। मैं आज जो भी बातें इस पाठ में लिख रहा हूं सब अनुभव जन्य हैं। मुझे वैदिक दर्शन का वह श्लोक याद आता है। :

"गुरू ब्रह्मा, गुरू विष्णु, गुरू देव महेश्वर हैं, गुरू साक्षात् परमेश्वर हैं, ऐसे साक्षात् परमेश्वर को मेरी कोटिशः वन्दना।"

प्रकरण ५

संस्थाओं का निर्माण

२५००वीं महावीर निर्वाण शताब्दी की भारत सरकार द्वारा घोषणा

राष्ट्रीय समिति की स्थापना :

आचार्य श्री तुलसी जी, आचार्य श्री सुशील मुनि जी, उपाध्याय श्री अमर मुनि जी, साध्वी श्री स्वर्णकांता जी के आशीवाद से हम संस्थाओं के निर्माण की ओर आगे बढ़े। इन कार्यों में प्रमुख कार्य था भगवान् महावीर का २५००वां निर्वाण महोत्सव मनाने के लिए चारों सम्प्रदायों की कमेटी का निर्माण करना। अब हमारे लिए प्रमुख समस्या थी जैन धर्म में से हमारा कन परिचय। छोटी आयु होने के कारण हमें कोई जानता नहीं था। जैन धर्म सदीयों से विभिन्न सम्प्रदायों में बदल रहा है। कभी श्वेताम्बर, कभी दिगम्बर, कभी स्थानकवादी कभी तेरहपंथी। सभी सम्प्रदायों की मान्यता भिन्न भिन्न है। पर सिद्धांतों की दृष्टि से जैन धर्म में एकता है। इस एकता का आधार अनेकांतवाद का सिद्धांत हे। भगवान महावीर का २५००वां निर्वाण शताब्दी समिति में जैन धर्म के चारों सम्प्रदायों के प्रमुख आचार्यो, मुनियों के नेतृत्व में प्रधान मंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने एक समिति गठित की। राष्ट्रपति इस के सरप्रस्त बने। समित की पहली मीटिंग में ५० लाख रूपए अखिल भारतीय स्तर के समारोह पर खर्चने की घोषणा की गई। समिति ने राज्यस्तरीय समिति गठित करने का फैसला लिया गया। इसी दृष्टि से भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय ने राज्य सरकारों को समितियां गठित करने को लिखा। कई राज्य सरकारों ने